समाजशास्त्र
13/5/20

From -
Dr Arunkumar
Reader
Dept of Socio
Shershah
College
SASARAM

BA Part II (H) (1) Paper - III

From:
Dr ARUN KUMAR
Reader
Shershah College
SASARAM

आदिकालीन अर्थ व्यवस्था (Social Anthropology) (सामाजिक मानव शास्त्र)

परिभाषा, विशेषताएं, आर्थिक विकास)

आदिकालीन अर्थव्यवस्था प्रत्यक्ष रूप से आदिम लोगों की जीविका-पालन या जीवन-धारण से सम्बन्धित है। जीवन धारण के लिए आवश्यक वस्तुओं का उत्पादन करना, उनका वितरण तथा उपभोग करना ही उनकी आर्थिक क्रियाओं का आधार और लक्ष्य होता है। आदिम समाज के सम्पूर्ण, पर्यावरण, विशेषकर, भौगोलिक पर्यावरण द्वारा बहुत प्रभावित होती है इसलिए जीवन भरण या जीवित रहने के साधनों को जुटाने के लिए आदिम लोगों को कठोर परिश्रम करना पड़ता है। आर्थिक जीवन अत्यधिक संघर्षमय तथा कठिन होने के कारण आर्थिक क्षेत्र में अन्य क्षेत्रों की भाँति प्रगति की गति बहुत धीमी है। आदिकालीन अर्थव्यवस्था एक ओर प्रकृति की शक्तियों और प्राकृतिक साधनों - फल, मूल, पशु-पक्षी, पहाड़ और घाटी, नदियों और जंगलों आदि पर निर्भर है। आदिकालीन मानव प्रकृति द्वारा प्रदत्त सामग्री से अपने उपकरणों का निर्माण करता है और उनकी सहायता से परिवार के सभी लोग उदर-पूर्ति के लिए कठोर परिश्रम करते हैं। इस परिश्रम से जो कुछ उन्हें प्राप्त होता है उससे आर्थिक आवश्यकताओं तथा प्राकृतिक शक्तियों और साधनों के बीच केवल एक सन्तुलन स्थापित हो पाता है। धन की इकट्ठा करने या उत्पादन के साधनों पर एकाधिकार प्राप्त करने और उसके बल पर दूसरों पर अपनी प्रभुता स्थापित करने की बात शायद ही कोई सोचता हो परिवार के सदस्यों को भूख से बचाने और उनकी रक्षा करने का उत्तरदायित्व समुदाय को ही लेना होता है। इस दशा में आदिकालीन अर्थ व्यवस्था पनपती है स्थिर रहती है और जीवित रहने के साधनों को जुटाकर मानव के अस्तित्व को सम्भव करती है।

→ **अर्थव्यवस्था की परिभाषा** -

सामाजिक मानव अपने अस्तित्व के लिए कुछ न कुछ आर्थिक आवश्यकताओं को अनुभव करता है इन आवश्यकताओं में सबसे आधारभूत आवश्यकता भोजन, वस्त्र तथा निवास है। इनमें भी सर्व प्रमुख भोजन है जिसके बिना मनुष्य का अस्तित्व सम्भव नहीं और मनुष्य के अस्तित्व के बिना समाज के अस्तित्व का सपना देखना भी मूर्खता है। अतः स्पष्ट है कि मानव अपने तथा समाज के अस्तित्व को बनाए

Scanned by TapScanner

रखने हेतु अपनी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने
प्रयत्न करना पड़ता है। यह तभी सम्भव है जब लोग कुछ
कुछ संगठित रूप में इस दिशा में क्रियाशील हो।
आर्थिक क्रियाओं के इस संगठन को
ही अर्थ व्यवस्था है।

- सर्वश्री मजूमदार तथा मदान ने लिखा है "जीवन की दिन-प्रतिदिन की अधिकाधिक आवश्यकताओं की कम से कम परिश्रम से पूरा करने हेतु मानव-सम्बन्धी तथा मानव-प्रयत्नों को नियमित व संगठित करना ही अर्थ व्यवस्था है। यह एक व्यवस्थित तरीके के सीमित साधनों द्वारा असीमित साध्यों (आवश्यकताओं) की अधिकतम सन्तुष्टि का प्रयत्न है।
- श्री एच. नेफील्ड ने अर्थ व्यवस्था को अतिसंक्षेप में परिभाषित करते हुए लिखा है "शारीरिक अस्तित्व की समस्याओं से सम्बन्धित व्यवहार के सम्पूर्ण संगठन को अर्थव्यवस्था कहते हैं।
श्री पिगू के अनुसार आर्थिक व्यवस्था जिसका उद्देश्य लोगों की मौद्रिक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि करना है उत्पादन को संगठित करने, वितरण को नियमित करने तथा समुदाय में स्वामित्व व अधिकारों और मांगों को निर्धारित करने के लिए होती है।"
- इन परिभाषाओं के आधार पर हम निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि अर्थ व्यवस्था का जिसके अन्तर्गत एक समाज या एक समूह के एक विशिष्ट प्राकृतिक पर्यावरण प्रौद्योगिकीय स्तर और सांस्कृतिक परिस्थितियों की सीमाओं के अन्दर मौलिक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि के लिए किए गए समस्त कार्यों का समावेश होता है।" यह परिभाषा सामान्य रूप से प्रत्येक प्रकार के समाज, चाहे वह आदिम हो या आधुनिक, की अर्थ व्यवस्था की व्याख्या करती है क्योंकि प्रत्येक समाज को ही अपनी अर्थव्यवस्था में कुछ न कुछ भिन्नता दिखाई देती है।

→ यह सत्य है कि आदिम मनुष्यों के आर्थिक जीवन पर भौगोलिक पर्यावरण का प्रभाव अत्यधिक होता है। उनके घर, पोशाक, औजार, व्यवस्था तथा अन्य आर्थिक क्रियाओं के स्वरूप और प्रकृति उस क्षेत्र में उपलब्ध सीमित साधनों के अनुसार ही निश्चित और नियन्त्रित होती है।

→ आर्थिक विकास — मशीन तैयार करने तथा अपनी अन्य आर्थिक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि के लिए की जाने वाली क्रियाओं के आधार पर आर्थिक संगठन के चार प्रमुख स्तर आदिम समाजों में मिलते हैं

→ 3

2.7 शिकार करने और भोजन इकट्ठा करने का स्तर —

यह मानव जीवन के आर्थिक पहलू का प्राथमिक स्तर है। इस स्तर में आर्थिक संगठन न केवल अव्यवस्थित है बल्कि अस्पष्ट और अनिश्चित भी है। इसका प्रथम कारण यह है इस स्तर में मानव भोजन का उत्पादन नहीं संकलन करता है। इस स्तर में मानव जीवन सम्पूर्ण तथा प्रकृति के गोद में पलने वाला होता है। घूम घूमकर जीवित रहने के लिए भोजन इकट्ठा करना पड़ता है। अगर भौगोलिक परिस्थितियां अनुकूल है, तो उन्हें भोजन सरलता से मिल जाता है, पर यदि प्रतिकूल है तो आदिम समाज के सामने कोई दूसरा रास्ता भी नहीं रह जाता, इसके सिवा कि प्रकृति जितना भी देती है या जिस रूप में देती है उतना और उसी रूप में जीवन यापन की साधनों को प्राप्त हो पाता है। चूंकि ऐसे समाजों में जीवित रहने के ये साधन (शिकार फल-मूल-शाक-पात आदि) अत्यधिक सीमित मात्रा में जीवित रहने के ये प्राप्त होते हैं। इन समाजों में दुर्बलों तथा अक्षमों के लिए जीवित रहना असम्भव सा होता है। इन सब कारणों से जनसंख्या भी अत्यधिक सीमित होती है।

→ आर्थिक जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिए अर्थात जीवित रहने के लिए प्रकृति से मोर्चा लेने के लिए इसके लिए अनिवार्य है कि वे सब आर्थिक क्रियाओं में सहयोग करें। इस सहयोगी व्यवस्था में परिवार के ही नहीं, समुदाय के पुरुष स्त्री बच्चे आदि हाथ बटाते हैं। तरुणों तथा प्रौढ़ पुरुषों के दल घर से बाहर जंगलों में शिकार करने मछली मारने जाते हैं जबकि स्त्रियों के दल जंगलों में कन्द मूल फल, शाक, फल, शहद, आदि इकट्ठा करने भोजन पकाने तथा बच्चों की देख-रेख करते हैं।

→ सर्वश्री वीन्स तथा लाइजर के अनुसार

(1) भोजन इकट्ठा करने वाले समाजों में जनसंख्या का घनत्व बहुत कम होता है।

(2) इस प्रकार के समाज अन्य समाजों से अलग रहकर जीवन व्यतीत करते हैं।

(3) ये परिवार में आपस में रक्त सम्बन्धी होते हैं

(4) ऐसे समाज जंगलों सुदूर प्रदेशों में या गहन जंगलों में पाए जाते हैं।

पशुपालन, एवम् चारागाह का स्तर – उपर्युक्त स्थिति से पशुपालन के स्तर में आदिम समाजों ने तब कदम रखा, जब मानव ने यह अनुभव किया कि पशुओं को मारने के बजाय अगर उन्हें पाला जाए तो उनसे जीवित रहने से अधिक साधन प्राप्त हो सकेंगे। ~~आर्थिक जीवन प्रथम स्तर की तुलना~~ क्योंकि उन पशुओं से उनके बच्चे भी प्राप्त होंगे और साथ ही दूध भी, इससे मानव का आर्थिक जीवन प्रथम स्तर की तुलना में अधिक निश्चित और स्थिर हुआ। क्योंकि पशुओं को लेकर एक स्थान परिवर्तन करना कष्टकर होता है। इसलिए एक स्थान पर जबतक उन पालतू पशुओं के खाने-पीने की चीजें अर्थात चारागाह मिल जाते हैं, तबतक स्थान परिवर्तन का कोई विशेष आवश्यकता नहीं होती, परन्तु घास आदि समाप्त हो जाने पर दूसरे चारागाह की खोज में ये दूसरी जगह चले जाते हैं। ऐसे भी जनजातीय समाज हैं जिनमें लोग कृषि के कार्य में पशुओं को व्यवहार में लाने के लिए पालते हैं।

→ श्रीफोई ने पशुओं को (6) उपयोगिताओं का उल्लेख किया है,
(1) पशुओं के मांस को भोजन के रूप में व्यवहार करना।
(2) खालों का प्रयोग –
(3) उनके बाल या उनका प्रयोग –
(4) दूध और दूध से बनने वाली वस्तुओं का प्रयोग –
(5) बोझा ढोने और गाड़ी खींचने का काम।
(6) सवारी का काम –

→ कृषि स्तर – इस स्तर का प्रारम्भ तब हुआ जब समाज को बोने और पौधे उगाने की कला आ गई। फसलों का बाग लगाने या खेती करने की इस क्षमता ने आर्थिक जीवन को पहले से अधिक स्थिर बनाया जनजातियों के लिए कीचा लगाकर खेती करना अथवा खेती द्वारा अनाज प्राप्त करना भी प्राकृतिक दशाओं पर अत्यधिक निर्भर और इस कारण अनिश्चित है, फिर भी उतना अनिश्चित नहीं जितना की शिकार पाना, शिकार करने व फल फूल इकट्ठा करने तथा पशुपालन की स्थिति से भोजन अधिक नियमित रूप से प्राप्त होने लगा।

→ औद्योगिक स्तर – कोई भी आदिम समाज पूर्णतया औद्योगिक स्तर तक नहीं पहुँच पाया है। आदिम समाज तो क्या कोई समाज केवल उद्योग पर ही निर्भर है आदिम समाज में सामान्य उद्योग दस्तकारी देखने को मिलती है और वह भी खेती आदि के साथ-साथ। जनजातीय समाजों में खेती के साथ-साथ टोकरी बनाना, सूत कातना तथा बुनना, रस्सी चटाई, दरी बनाना कपड़े बुनना, बेंत का काम करना, लोहे के औजार बनाना, मिट्टी और धातुओं के बर्तन बनाना आदि देखा जाता है।

→ आदिम अर्थ-व्यवस्था की प्रकृति तथा विशेषताएं :-

(1) आदिम समाजों में प्रायः सभी प्रकार की आर्थिक क्रियाओं को धर्म और जादू-टोना के साथ, किसी भी आर्थिक क्रिया को करने से पहले आदिम समाजों में अनेक प्रकार के धार्मिक संस्कारों और जादू-टोने का भी सहारा लिया जाता है। धर्म और जादू के सहायता के बगैर क्रियाओं में सफलता असम्भव है। इस प्रकार अनेक अन्ध विश्वास आदिम समाज में पाए जाते हैं।

(2) आदिम अर्थ व्यवस्था [redacted] दूसरी प्रमुख विशेषता यह है कि आर्थिक उत्पादन प्रायः किसी भी प्रकार की प्रौद्योगिकीय सहायता के बिना ही किया जाता है।

(3) आदिम अर्थ व्यवस्था के अन्तर्गत आर्थिक वस्तुओं का उत्पादन अधिकतर उपभोग के लिए किया जाता है।

(4) आर्थिक वस्तुओं का उत्पादन विनिमय करने के लिए नहीं होता है

(5) उत्पादन या विनिमय के द्वारा मुनाफाखोरी की प्रवृत्ति का बिल्कुल अभाव आदिम अर्थ व्यवस्था का एक प्रमुख लक्षण है। आदिम समाजों के लोग एक-दूसरे से मुनाफा लेने की बात सोचते तक नहीं परन्तु आधुनिक समाजों के सम्पर्क में आने के फलस्वरूप अनेक आदिम समाजों में मुनाफाखोरी की प्रवृत्ति प्रवेश कर गई है।

(6) चूंकि आदिम समाज में मुद्रा का कम प्रयोग होता है और आर्थिक वस्तुओं का अधिशेष कम होने के कारण बाहरी समूहों से विनिमय कार्य नाममात्र होता है। इसलिए आदिम अर्थ व्यवस्था में नियमित बाजार, व्यापारी, दलाल, आदि का अभाव होता है।

(7) — आदिम समाजों में परिवार आत्म निर्भर होता है, आदिम समाजों में विशेषज्ञ नहीं होते हैं एक व्यक्ति जो पुजारी है वह जादू-टोना भी करता है, और खेती का काम भी जानता है। टोकरी बनाना, सूत कातना और बुनना, मिट्टी के बर्तन भी बनाना होता है।

(8) — आदिम समाजों की अधिकतर आर्थिक क्रियाएं सामूहिक और सहकारी आधार पर संगठित होती हैं।

(9) → व्यक्तिगत या निजी सम्पत्ति की धारणा प्रत्येक आदिम समाज में किसी न किसी रूप में होता है

(10) आदिम समाजों में आर्थिक क्षेत्र में नए परिवर्तन और अविष्कार बहुत ही कम होते हैं।

(11) अनेक आदिम समाजों में उपहार को ही विनिमय का आधार माना जाता है। उपहार लेना और देना आदिम समूहों में विनिमय का एक सामाजिक रीति नियम का तरीका है।

(12) इसी प्रकार आदिम समाजों में अतिथि सत्कार या आतिथ्य आर्थिक सेवा के रूप में देखने को मिलता है। खाने पीने की चीजों के सम्बन्ध में — आदिम समाज के लोग बहुत उदार होते हैं। कोई भी बाहर का आदमी आकर उनके यहाँ खा-पी सकता है। इस प्रकार शिकार अथवा खेती समाजों पर समुदाय के अन्य लोगों का अधिकार होता है।

Prepared-
Dr. Arun Kumar
Reader
Deptt of Sociology
Bhoonshah College
BASARAM-

Scanned by TapScanner